सुभाष नीरव

ई-मेल-subhneerav@gmail.com

पानी

उसे इतने बरस बाद अचानक अपने घर आया देख मैं चकित भी हूँ और खुश भी। यही भाव मेरी पत्नी के चेहरे पर हैं। कभी हम एक ही कालोनी में रहते थे, प्राय: यह हमारे घर आ धमकता था, छुट्टी के दिन।

उसने बताया कि वह इधर से गुज़र रहा था, सोचा अपने मित्र से मिलता चलूँ। बहुत देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। चाय-पानी हुआ। बीच बीच में वह उदास भी हो जाता है। चुप और गंभीर-सा ! मानो अंदर कुछ उठा-पटक हो रही हो। फिर हँसने लगता है किसी बात पर। जैसे पहले हँसा करता था। वह बहुत कुछ पूछता भी है, मेरे बारे में, मेरे परिवार के बारे में, मेरे बेटे के बारे में और मेरी बेटी के बारे में। उलाहना भी देता है कि मैंने उसे बेटी के विवाह पर नहीं बुलाया।

इधर मेरे अंदर भी उठा-पटक जारी है। यह उठा -पटक चल तो कई दिन से रही है, पर जब से वह आया है, एकाएक तेज़ हो उठी है। सोच रहा हूँ कि शायद ईश्वर ने ही मित्र को रास्ता भुलवा दिया और वह मेरे घर आ गया। पुराना मित्र है। इससे तो बात की ही जा सकती है। मैं भूमिका के लिए शब्द तलाशने लगता हूँ। इसके बेटे यहीं दिल्ली में हैं, अच्छा कमा रहे हैं। इसकी भी मेरी तरह पेंशन लगी हुई है। अब कोई जिम्मेदारी भी नहीं रही इसके कंधों पर। पत्नी का देहांत नौकरी पर रहते ही हो गया था। किसी चीज की इसे क्या कमी होगी? यह अवश्य मेरी... मैं कुछ कहने को होता हूँ, पर हकला जाता हूँ। कह नहीं पाता।

नहीं, यह पहली बार इतने बरस बाद मेरे घर आया है। मुझे अपनी परेशानी इससे साझा नहीं करनी चाहिए। क्या सोचेगा, विदेश में बेटा नौकरी कर रहा है। बेटी की शादी कर दी। पेंशन लगी हुई है। पर इसे क्या मालूम कि पिछले एक साल से बेटे ने एक पैसा नहीं भेजा। न ही फोन पर बात करता है। घर की हालत पतली होती जा रही है बेशक घर में दो ही जीव है- एक मैं और दूसरा मेरी पत्नी। पेंशन का बड़ा हिस्सा मकान के किराये में, बेटी की शादी पर लिए कर्ज़ की किस्त और बिजली-पानी के बिल चुकाने में ही खर्च हो जाता है। जो थोड़ा-बहुत बचता है, उसमें हारी-बीमारी, दवा-दारू और घर का राशन-पानी। पिछले दस दिन से तो घर की हालत...

एकाएक वह उठकर विदा लेने लगता है। उसके चेहरे पर पल पल बदल रहे भाव से लगता है, वह बहुत परेशान है। मैं पूछ बैठता हूँ, "क्या बात है विपिन? कुछ परेशान से हो?"

"यार क्या बताऊँ? इधर से गुजर रहा था। बस में किसी ने जेब साफ़ कर दी।...एकाएक ख्याल आया, तुम यहीं पास में रहते हो, क्यों न तुमसे मिल भी लूँ और... और..." वह मेरी ओर देखता देखता एकाएक नजरें झुका लेता है। मेरी पत्नी भी करीब खड़ी है। मेरे दिल की धड़कन तेज़ होने लगती है।

"यार, तुम्हारे पास हजार रुपये हों तो देना, जल्द ही लौटा दूँगा..." वह मरी-सी आवाज़ में कहता है। मैं कुर्ता उठाकर इसे अब अपना पेट कैसे दिखाऊँ? भीतर ही भीतर पानी हो चुका मैं निरीह नज़रों से पत्नी के चेहरे की ओर देखता हूँ। वह मुझे संकट से उबार लेती है, "भाई साब, हजार तो नहीं हैं। पाँच सौ का एक नोट बचा है, चलिए आप ले लें।" और पत्नी पाँच सौ का नोट लाकर उसके हाथों में थमा देती है। वह खुशी-खुशी हमसे विदा ले सीढ़ियाँ उतर जाता है!

मेरा चेहरा उतरा हुआ है, पर पत्नी के चेहरे पर पानी चढ़ा हुआ है!

सुभाष नीरव

स्वाद

सड़क के बीचोबीच बने फ्लाई ओवर के नीचे एक पिलर के पास अपनी गृहस्थी जमाये एक भिखारी ने समीप ही नंगे पांव खेल रहे अपने पाँच और सात वर्षीय बच्चों को आवाज़ लगाई, " ओ रे चिक्की-मनकू, जाओ रे, भंडारे में जाकर लाइन में अपना नम्बर लगाओ। तुम्हारी माई और मैं भी आता हूँ।"

पास ही एक छोटा-सा मंदिर भी था जहाँ आए दिन कोई न कोई भंडारा होता रहता था। और ये छेदामल हलवाई, आँधी हो, बारिश हो, हर वीरवार साईं बाबा का भंडार किया करता था। खाने की खूब मौज थी यहाँ भिखारियों को। आते-जाते लोग इन्हें भीख में सिक्के और नोट भी दे जाते थे। भीख के काम में इनके बच्चे बड़े होशियार थे। जैसे ही, सड़क पर आती-जाती गाड़ियाँ कुछ देर के लिए रुकतीं, ये दौड़कर उनके पास पहुँच अपना कुशल अभिनय शुरु कर देते। कई बार औरत और मर्द भी सड़क के किनारे जा खड़े होते।

बच्चों की माई ने अपने मर्द की ओर देखा और मुँह-सा बनाते हुए कहा, "रहण दे, आज मन नहीं...।"

"देख तो कैइसा नखरा कर रही... मुफत में मिल रहा है ना !" मर्द ने कहा।

औरत की निगाहें सामने सड़क पार लगी एक रेहड़ी पर लगी थीं जिस पर दो-चार लोग खड़े होकर छोले-भटूरे खा रहे थे। बोली, "ये भंडारे वाले का कब्बी छोले-भटूरे क्यों नहीं खिलाते। रोज़-रोज़ पूड़ी और आलू की सब्जी...। मन उबा गया खाते खाते...।"

मर्द ने उठकर बैठते हुए अपनी औरत की आँखों में झांका और उसके करीब सरक आया, प्यार से बोला "छोले-भटूरे खाने का मन है का?"

औरत ने ऊपर-नीचे मुँह हिलाकर हल्की-सी 'हूँ' की आवाज़ निकाली।

"चल खड़ी हो। बच्चों को भी ले ले। आज हम छोले-भटूरे ही खाएँगे..." मर्द उठकर खड़ा हो गया। बच्चों ने सुना तो वे भी उछलने-कूदने लगे।

देखते देखते वे चारो रेहड़ी के पास जा खड़े हुए। रेहड़ी वाला उन्हें जानता था, उसने ऊँची आवाज़ में उन्हें घुड़क दिया, "भागो यहाँ से... भिखारी कहीं के... मेरी रेहड़ी पे कोई भंडारा लगा है। वो हलवाई की दुकान में साईं बाबा का भंडारा लगा है, वहीं जाकर लाइन में लगो।"

मर्द आगे बढ़ा, "नहीं, आज हम भंडारा नहीं खाएँगे।"

"अरे देखो तो सही, भिखारी भी स्वाद..." रेहड़ी वाला अभी अपना वाक्य भी पूरा न कर पाया था कि मर्द ने गर्दन सीधी किए किए जेब में से पैसे निकाले और बोला, "हाँ, आज हम भी तेरे छोले-भटूरे का स्वाद लेंगे। बोल कित्ते पैसे चार जन के?"

सुभाष नीरव

गुड़ुप !

दिन ढलान पर है और वे दोनों झील के किनारे कुछ ऊंचाई पर बैठे हैं। लड़की ने छोटे छोटे कंकर बीनकर बाईं हथेली पर रख लिए हैं और दाएं हाथ से एक एक कंकर उठाकर नीचे झील के पानी में फेंक रही है, रुक रुककर। सामने झील की ओर उसकी नजरें स्थिर हैं। लड़का उसकी बगल में बेहरकत खामोश बैठा है।

"तो तुमने क्या फैसला लिया ?" लड़की लड़के की ओर देखे बगैर पूछती है।

"किस बारे में?" लड़का भी लड़की की तरफ देखे बिना गर्दन झुकाए पैरों के पास की घास के तिनके तोड़ते हुए प्रश्न करता है।

इस बार लड़की अपना चेहरा बाईं ओर घुमाकर लड़के को देखती है, "बनो मत। तुम अच्छी तरह जानते हो, मैं किस फैसले की बात कर रही हूं।"

लड़का भी चेहरा ऊपर उठाकर अपनी आँखें लड़की के चेहरे पर गड़ा देता है, "यार, ऐसे फैसले तुरत फुरत नहीं लिए जाते। समय लगता है। समझा करो।"

लड़की फिर दूर तक फैली झील की छाती पर अपनी निगाहें गड़ा देती है, साथ ही हथेली पर बचा एकमात्र कंकर उठा कर नीचे गिराती है – गुड़ुप !

"ये झील बहुत गहरी है न?"

"हां, बहुत गहरी। कई लोग डूबकर मर चुके हैं। पर तुम ऐसा क्यों पूछ रही हो?" लड़का लड़की की तरफ देखते हुए पूछता है। लड़की की नज़रें अभी भी दूर तक फैले पानी पर टिकी हैं, "क्या मालूम मुझे इस झील की जरूरत पड़ जाए।"

लड़का घबरा कर लड़की की ओर देखता है, "क्या मूर्खों जैसी बात करती हो ? चलो उठो, अब चलते हैं, अंधेरा भी होने लगा है।"

दोनों उठकर चल देते हैं। दोनों खामोश हैं। पैदल चलते हुए लड़की के अंदर की लड़की हंस रही है, "लगता है, तीर खूब निशाने पर लगा है। शादी तो यह मुझसे क्या करेगा, मैदान ही छोड़कर भागेगा। अगले महीने प्रशांत इस शहर में पोस्टिड होकर आ रहा है, वो मेरे साथ लिव - इन में रहना चाहता है।"

लडके के भीतर का लड़का भी फुसफुसाता है, "जाने किसका पाप मेरे सिर मढ़ रही है। मैं क्या जानता नहीं आज की लड़कियों को? कुछ दिन इसके साथ मौज मस्ती क्या कर ली, शादी के सपने देखने लगी। हुंह ! मेरी कम्पनी वाले मुझे कब से मुंबई ब्रांच में भेजने को पीछे पड़े हैं। कल ही ऑफर मंज़ूर कर लेता हूं।"

चलते चलते वे दोनों सड़क के उस बिंदु पर पहुंच गए हैं जहां से सड़क दो फाड़ होती है। एक पल वे खामोश से एक दूजे को देखते हैं, फिर अपनी अपनी सड़क पकड़ लेते हैं।